अथ सप्तमोऽध्यायः

७. ज्ञानविज्ञानयोग

श्रीभगवान बोले— हे पार्थ, अनन्य प्रेम से मुझ में आसक्त मन वाले, मेरे आश्रित होकर अनन्य प्रेमभाव से योग का अभ्यास करते हुए तुम मुझे पूर्णरूप से निस्सन्देह कैसे जान सकोगे, उसे सुनो. (७.०१)

मैं तुम्हें ब्रह्म अनुभूति (विज्ञान) सहित ब्रह्मविद्या (ज्ञान) प्रदान करूंगा, जिसे जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता है. (मु.उ. १.०१.०३ भी देखें) (७.०२)

हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है और उन प्रयत्न करने वाले सिद्ध योगियों में भी कोई एक मुझे पूर्णरूप से जान पाता है. (७.०३)

मेरी प्रकृति — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार तत्त्व — आठ प्रकार से विभाजित है. (१३.०५ भी देखें) (७.०४)

हे महाबाहो, उपरोक्त प्रकृति मेरी अपरा शक्ति है. इससे भिन्न मेरी एक दूसरी परा चेतन शक्ति (अर्थात् 'पुरुष') है, जिसके द्वारा यह जगत धारण किया जाता है. (७.०५)

तुम ऐसा समझो कि इन दोनों शक्तियों — प्रकृति और पुरुष — के संयोग से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं; तथा मैं, परब्रह्म परमात्मा, ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति और प्रलय का स्रोत हूं. (१३.२६ भी देखें) (७.०६)

हे धनंजय, मुझसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है. यह सम्पूर्ण जगत मुझ परब्रह्म परमात्मारूपी सूत में (हार की) मणियों की तरह पिरोया हुआ है. (७.०७)

हे अर्जुन, मैं जल में रस हूं, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूं, सब वेदों में ओंकार हूं, आकाश में शब्द और मनुष्यों में मनुष्यत्व हूं. मैं पृथ्वी में पवित्र गन्ध और अग्नि में तेज हूं. सम्पूर्ण भूतों का जीवन और तपस्वियों में तप हूं. (७.०८-०९)

हे पार्थ, सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज मुझे ही जानो. मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूं. (९.१८, १०.३९ भी देखें). हे भरतश्रेष्ठ, मैं आसक्ति और कामना रहित बलवानों का बल हूं और मनुष्यों में धर्म के अनुकूल (सन्तान की उत्पत्ति के लिए) किये जाने वाला सम्भोग हूं. (७.१०-११)

जो भी सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक गुण हैं, उन सबको तुम मुझसे ही उत्पन्न हुआ जानो. (अतः) वे (गुण) मुझपर निर्भर करते हैं, परन्तु मैं उनके आश्रित या उनसे प्रभावित नहीं होता हूं. (९.०४, ९.०५ भी देखें) (७.१२)

प्रकृति के इन तीनों गुणों के कार्यों से यह सारा संसार भ्रमित रहता है, अतः मनुष्य इन गुणों से परे मुझ अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता है. (७.१३)

मेरी इस अलौकिक त्रिगुणमयी माया को पार करना बड़ा ही कठिन है; परन्तु जो मनुष्य मेरी शरण में आते हैं, वे इस माया को (आसानी से) पार कर जाते हैं. (१४. २६, १५.१९, १८.६६ भी देखें) (७.१४)

पाप कर्म करने वाले, मूर्ख, आसुरी स्वभाव वाले नीच मनुष्य तथा माया के द्वारा हरे हुए ज्ञान वाले मेरी शरण में नहीं आते हैं. (७.१५)

हे अर्जुन, चार प्रकार के उत्तम मनुष्य — दुःख से पीडित, परमात्मा को जानने की इच्छा वाले जिज्ञासु, धन या किसी इष्टफल की इच्छा वाले तथा ज्ञानी — मुझे भजते हैं. (तु.रा. १.२१.०३ भी देखें) (७.१६)

उन चार भक्तों में भी मुझ में निरन्तर लगा हुआ अनन्य भक्ति युक्त ज्ञानी श्रेष्ठ है; क्योंकि मुझ परमात्मा को तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी भक्त को मैं अत्यन्त ही प्रिय हूं और वह भी मुझे अत्यन्त प्रिय है. (७.१७)

उपरोक्त सभी भक्त श्रेष्ठ हैं, परन्तु मेरी समझ से तत्त्वज्ञ तो साक्षात् मेरा ही स्वरूप है; क्योंकि युक्तात्मा उत्तम गति को प्राप्त कर मेरे परमधाम में निवास करता है. (९.२९ भी देखें) (७.१८)

अनेक जन्मों के बाद ब्रह्मज्ञान प्राप्तकर कि "यह सब कुछ कृष्णमय है," मनुष्य मुझे प्राप्त करता है; ऐसा महात्मा बहुत दुर्लभ है. (७.१९)

भोगों की कामना द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, ऐसे मनुष्य अपने स्वभाव से प्रेरित होकर नियमपूर्वक देवताओं की पूजा करते हैं. (७.२०)

जो कोई सकाम भक्त जिस किसी भी देवता को श्रद्धापूर्वक पूजना चाहता है, मैं उस भक्त की श्रद्धा को उसी देवता के प्रति स्थिर कर देता हूं. उस स्थिर श्रद्धा से युक्त वह मनुष्य अपने इष्ट देव की पूजा करता है और उस देवता के द्वारा इच्छित भोगों को निस्सन्देह प्राप्त करता है. वास्तव में वे इष्टफल मेरे द्वारा ही दिये जाते हैं. (७.२१-२२)

परन्तु उन अल्पबुद्धि वाले मनुष्यों को (नाशवान) देवताओं का दिया हुआ फल नाशवान होता है. देवताओं को पूजने वाले देवलोक को प्राप्त करते हैं तथा मेरे भक्त (परमधाम में आकर) मुझे ही प्राप्त करते हैं. (७.२३)

अज्ञानी मनुष्य मुझ परब्रह्म परमात्मा के — मन, बुद्धि तथा वाणी से परे, परम अविनाशी — दिव्यरूप को नहीं जानने और समझने के कारण ऐसा मान लेते हैं कि मैं बिना रूप वाला निराकार हूं तथा रूप धारण करता हूं. (७.२४)

जो मूढ़ मनुष्य मुझ परब्रह्म परमात्मा के जन्मरहित, अविनाशी, दिव्यरूप को अच्छी तरह नहीं जान तथा समझ पाते हैं, उन सब के सामने — अपनी योगमाया से छिपा हुआ — मैं कभी प्रकट नहीं होता हूं. (७.२५)

हे अर्जुन, मैं भूत, वर्तमान और भविष्य के सब प्राणियों को जानता हूं, परन्तु मुझे कोई नहीं जानता. (७.२६)

हे अर्जुन, राग और द्वेष से उत्पन्न (सुख-दुःखादि) द्वन्द्व द्वारा भ्रमित सभी प्राणी अत्यन्त अज्ञता को प्राप्त होते हैं; परन्तु निष्काम भाव से अच्छे कर्म करने वाले जिन मनुष्यों के सारे पाप नष्ट हो गये हैं, वे राग-द्वेष जनित भ्रम से मुक्त होकर दृढ़निश्चय कर मेरी भक्ति करते हैं. (७.२७-२८)

जो मेरे शरणागत होकर जन्म और मरण से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्न करते हैं, वे उस परब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को तथा सारे कर्मों को पूर्णरूप से जान जाते हैं. (७.२९)

जो युक्तचित्त वाले मनुष्य — अन्त समय में भी — मुझे ही अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञरूप से जानते हैं, वे मुझको ही प्राप्त होते हैं. (८.०४ भी देखें) (७.३०)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥